ओ३म्
राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

तिथि—10 दिसम्बर 2021
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२२
युगाब्द-५१२२, अंक-१४५, वर्ष-१४
पौष विक्रमी २०७८ (दिसम्बर 2021)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद ‘अथर्ववेदाचार्य’
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

यतोयतः समीहसे ततो नोऽ अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ —यजुः० ३६। २२

व्याख्यान—हे परमेश्वर! दयालो! [(यतो यतः)] जिस—जिस देश से आप (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो, [(ततो नो अभयं कुरू)] उस-उस देश से हमको अभय करो। अर्थात् जहाँ-जहाँ से हमको भय प्राप्त होने लगे, वहाँ-वहाँ से सर्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो [(शं नः कुरू०)] तथा प्रजा से हमको सुख करो। हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहे। भय देनेवाली कभी न हो। तथा पशुओं से भी हमको अभय करो। किञ्च किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आप की कृपा से कभी न हो। जिससे हम लोग निभर्य होके सदैव परमानन्द को भोगें, और निरन्तर आपका राज्य। तथा आपकी भक्ति करें ।।

सम्पादकीय

किसान आन्दोलन के सन्दर्भ

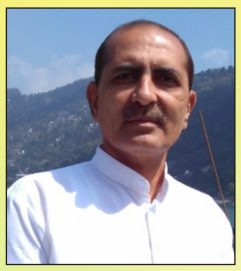

एक वर्ष से अधिक समय तक चले किसान आन्दोलन का समय, उसका समापन और उससे जुड़ी अनेकों घटनाएं इस काल के इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। हम यहां पर कृषि कानूनों की समीक्षा नहीं कर रहे हैं, कृषि कानून किसानों के कितना हित में हैं, कितना अहित में हैं क्या उसमें किसानों के लिए लाभकारी है, क्या किसानों के लिए हानिकारक है इस पर भी चर्चा नहीं है। लेकिन ये कानून लागू किस प्रकार किए गए और उन्हें वापिस जिस प्रकार से लिया गया उसकी समालोचना तो की जा सकती है। कानून समाज के लिए होते हैं और समाज द्वारा ही उनका निर्माण होता है, जब कोई भी कानून बनता है तो कानून बनाने वाली संस्थाएं सभी सम्बन्धित पक्षों से विमर्श करती हैं, जिन पर उसका सीधा प्रभाव पड़ना है उनसे सीधे बातचीत की जाती है। हो सकता वे सामान्यजन हों और इतना न समझ पाते हों तो उन्हें समझाया जाता है, विश्वास में लिया जाता है। उसके बाद हमारे देश में तो संसद में उन पर विषय की गम्भीरता के अनुसार कम या अधिक चर्चा होती है। ये कृषि कानून कितना महत्वपूर्ण थे, यदि सरकार के दृष्टिकोण से ही देखा जाए तो सरकार इन्हें कृषि के लिए इतना क्रान्तिकारी सुधार मान रही थी, जितना 1991 के अर्थिक सुधार।

लेकिन इतने महत्वपूर्ण होते हुए भी कानूनों को जिस जल्दबाजी में केवल विशेषज्ञों की राय लेकर अध्यादेश के माध्यम से बिना संसद में व्यापक चर्चा के लागू किया गया उससे सरकार की हठधर्मिता या अपने-आप को ही सबका सबसे बड़ा हितैषी सिद्ध करने की मानसिकता स्पष्ट होती है। किसानों के साथ पहले ही बातचीत न करना, कानूनों में जो-जो प्रावधान किसानों के विरुद्ध थे उन पर यदि कानून बनने से पहले ही किसानों से बातचीत करके दूर कर लिया जाता तो जो कानूनों में किसानों के हित का था वह तो लागू हो सकता था। लेकिन सरकार द्वारा हठधार्मिता दिखाई गई और उसी का परिणाम रहा कि किसान संगठन प्रारम्भ से ही उनकी वापसी से कम पर बातचीत को ही तैयार नहीं हुए। एक वर्ष तक आन्दोलन चलता रहा। लाखों लोगों को परेशानी का सामना करना पड़ा। जनता का हर वर्ग उससे पीड़ित हुआ। सरकार की नासमझी लाखों लोगों के लिए समस्यओं का कारण बन गई। सैंकड़ों किसान इस दौरान काल का ग्रास बने। हो सकता है उनमें से कुछ की मृत्यु प्राकृतिक रूप से रही हो लेकिन फिर भी कुछ तो ऐसे थे कि जिनकी मृत्यु का कारण आन्दोलन बना और ऐसी स्थिति न होती तो मृत्यु टाली जा सकती थी।

इसके अलावा भी लाखों ऐसे लोग जो दिल्ली और आस-पास क्षेत्रों में रहते थे, किस प्रकार से उन्हें रोज आने व जाने में समस्या हुई इसका जिम्मा तो शासन-प्रशासन का ही है। व्यवस्था बनाकर रखने का शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... काम तो शासन का ही है जो सरकार ने ठीक से नहीं किया और लाखों लोगों को सालभर के लिए परेशान होने के लिये छोड़ दिया।

उससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात तो यह रही कि सरकार द्वारा सामान्य जनता जो आन्दोलन के कारण से परेशानी झेल रही थी उसको किसानों से संघर्ष करने के लिए उकसाया गया। वह लोगों की समझदारी और किसानों की संगठित शाक्ति के कारण से ऐसी स्थिति से बचा जा सका अन्यथा सरकार तो ऐसी स्थिति पैदा करने में कोई कसर नहीं छोड़ रही थी।

अन्त में सरकार द्वारा कानून वापिस लेने का एकतरफा निर्णय लिया गया। कानून वापिस हुए एक वर्ष बाद, कुछ राहत की खबर रही कि प्रधानमन्त्री ने स्वयं गलती मानकर ठीक ही किया। इसे भी किसानों की जीत न मानकर सरकार द्वारा ऐसे प्रस्तुत किया गया जैसे उसने समझदारी दिखाई है। हर परिस्थिति में अपनी पीठ थपथपाने की सोच सरकार के लिए घातक सिद्ध होती है और यह भी अंहकार को जन्म देती है। इस पूरे आन्दोलन के लिए सरकार ही ज्यादा जिम्मेवार है क्योंकि गलत ढंग से एक सही सुधार को लेकर आना, अपने हठ पर अड़ जाना और अन्त में अपने को ही बड़ा दिखाते हुए कानूनों को वापिस लेना, हर परिस्थिति में अपनी ही पीठ थपथपाते रहना।

अब आगे का रास्ता तो यही बचता है कि सरकार कृषि क्षेत्र में सुधार अवश्य करे क्योंकि कृषि क्षेत्र में सुधार के बिना न किसानों का हित होगा, न राष्ट्र की उन्नति सम्भव है। आन्दोलनकारी किसानों को भी चाहिए कि अपने दृष्टिकोण को व्यापक करते हुए देशभर के किसानों की सोचें और सबके हित में जो सुधार प्रस्तुत हो उनका स्वागत व उनको स्वीकार करें।

उसी स्थिति में राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल होगा, तभी समाज व राष्ट्र में शान्ति की स्थापना होगी, तभी राष्ट्र के अन्दरूनी व बाह्य शत्रुओं से लड़ा जा सकेगा।

अब सभी आर्यों/आर्याओं का भी अपने लक्ष्य को धूमिल नहीं होने देना है और आर्य निर्माण को जो हर परिस्थिति में एक सतत् गति से चलता रहा है उसे और अधिक गति प्रदान करनी है।

-आचार्य सतीश, महासचिव, आर्य महासंघ।

आर्य समाज का मुख्य कार्य

-आनन्द आर्य, मुजफ्फरनगर

आर्य समाज का मुख्य कर्म क्या है? आज तो अलग-अलग समाजों ने अलग-अलग कई काम उठाये हुये है। कहीं स्त्री शिक्षा जिसमें सिलाई मशीनें रख सिलाई सिखाई जा रही है। कहीं चिकित्सा (होम्योपैथिक चिकित्सा में अधिक खर्च नहीं करना पड़ता है, और नाममात्र का शुल्क रु 2/- प्रतिदिन लेकर खर्च शून्य हो जाता है। कहीं कहीं बिना शुल्क भी होम्योपैथिक दवाईयाँ दी जा रही हैं।) जिस पर भी कुछ अधिक खर्च नहीं आता है। बहुत स्थानों पर बच्चों के इंग्लिश माध्यम के स्कूल आर्य समाजों के भवनों में चल रहे हैं और कमाई का साधन बने हुये हैं। कहीं-कहीं कथित योगासन शिखाए-कराये जा रहे हैं, कहीं कहीं आर्य समाजों में विवाह आदि संस्कारों के कराये जाने का भी प्रबंध है भले ही वह वैदिक संस्कार पद्यति से भिन्न ही क्यों न हो। कुछ आर्य समाज तो घरों से संचालित है और उनका मुख्य कार्य होता है, विवाह प्रमाण पत्र देना, जिसके लिए अच्छी दक्षिणा प्राप्त हो जाती है और लगभग सभी आर्य समाजों में जो एक नियमित कर्म है वह है यज्ञ-हवन-अग्निहोत्र जो किसी समाज में साप्ताहिक होता है और कहीं दैनिक भी। बस इन सभी कामों को इतिश्री मान कर समाज पदाधिकारी खुश रहते हैं कि उनके नेतृत्व में उनकी समाज, आर्य समाज के लिए, समाज और राष्ट्र के लिए भी उत्तम कार्य कर रही है। **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'** यह ब्राह्मण की उक्ति उनका मूल सिद्धान्त है। अग्निहोत्र किया और संसार का सबसे उत्तम कर्म कर लिया गया। ठीक भी है सबसे उत्तम कर्म करने के बाद अन्य कर्म गौण कम महत्त्व के हो जाते हैं। मुख्य के सामने गौण का महत्त्व ही क्या? अग्निहोत्र करने के बाद समाज भवन से बाहर आते हुये किसी आर्य समाजी को देखेंगे तो लगेगा कि उनके मन में आनन्द भरा हुआ है, उल्लसित है, हो भी क्यों नहीं सबसे उत्तमकर्म जो करके निकले हैं।

नगरों की पुराने आर्य समाजों के पास आर्य समाज की उन्नति के समय में बने भवनों में कुछ स्थानों पर व्यवसायिक दुकानें भी बनी हुई हैं जिनसे नियमित मासिक आय होती है। सदस्यता शुल्क तो नाम-मात्र का ही होता है, क्योंकि शुल्क सभी को देना होता है इससे उसे बढ़ाने का क्या लाभ। ऐसी समाजो में साप्ताहिक अथवा दैनिक अग्निहोत्र के लिए खर्च की व्यवस्था हो जाती है। ऐसी समाजों में जहाँ आय के साधन नहीं हैं, कुछ सदस्य-पदाधिकारी अपने धन से अथवा सामान से साप्ताहिक अग्निहोत्र का प्रबन्ध कर लेते हैं। साप्ताहिक कार्यक्रम में सत्संग कार्य भी हो जाता है। जिसमें कोई पदाधिकारी किसी पुस्तक के एक दो पृष्ठ पढ़ देता है, कोई एक-आध भजन गा देता है। कभी-कभी कोई बाहर से विद्वान्, भजनोपदेशक भी आ जाता है।

एक और विशेष कार्य सामर्थ्यनुसार कुछ सभायें वर्ष में एक-आध बार एक दिन, दो दिन, तीन दिन के वार्षिक सम्मेलन, भजनोपदेशक, विद्वान के द्वारा सम्पन्न कराते रहते हैं। सभी समाजों में न ऐसा हो पाता है, न उन में सामर्थ्य है और न इच्छा-शक्ति।

इस स्थिति में आर्य समाज का मुख्य कार्य क्या है और वह कैसे बढ़े? कदाचित आर्यों की संख्या बढ़ तो नहीं रही। कई स्त्री-पुरुषों से सुना जाता है कि उनके दादा-नाना आदि आर्य समाजी थे, प्रतिदिन एकान्त में बैठते थे, हवन करते थे, समाज के सत्संग में जाते थे परन्तु वे सब चले गये, न दादा रहे न नाना अब तो शेष हैं पोते-पोतियाँ, धेवते-धेवतियाँ। तो क्या ये दादा-नाना के वंशज आर्य नहीं रहे। हाँ ये आर्य नहीं रहे, आर्य तो क्या आर्य समाजी भी नहीं रहे। घोर अंधकार में उसी प्रकृति-पूजा में भी फंसे हुये हैं जिसके लिये वेद ने कहा है- **'अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।'** अर्थात् जो प्रकृति पूजा करता है। वह अगले जन्म में अंधी, अज्ञान से भरी योनियों को प्राप्त होता, 'अगले जन्म किसने देखा' बताने पर उत्तर आता है। उल्टे यह भी कहा जाता हैं कि आर्य समाजी नास्तिक होते हैं, न ईश्वर को मानते हैं न देवी-देवताओं- पितरों को। इसे क्या कहेंगे अज्ञान की पराकाष्ठा। 'उल्टा चोर कोतवाल को दण्डे', मगर इसमें इन बेचारों का कोई कसूर नहीं हैं। कसूर हमारा है, हम इतना श्रम नहीं उठाते कि आगे जनता उससे लाभान्वित हो सके। जैसे आर्येतर से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, काई उत्तरदायित्व नहीं।

अपनी गाथा गाने से कुछ लाभ तो नहीं परन्तु इस गाथा का दर्द मुझे कचोटता रहता है। मैंने एक ऐसे विद्यालय में शिक्षा पाई जहाँ लगभग आधे से अधिक अध्यापक आर्य समाजी थे। वास्तव में आर्य समाजी भी दो प्रकार के देखने में आये हैं, एक जो जन्म से आर्य समाजी रहे हैं और दूसरे जो प्रयत्न से बने हैं। जन्म से बने समाजी अपने मतलब के सब सिद्धान्त जानते हैं, यथा मूर्ति-पूजा की वास्तविकता, अन्ध-विश्वासों से दूरी, कपटी-छद्मवेशी की पहचान, अपात्र को दान से दूरी आदि। अपात्र को दान न देना उन्हें आता है परन्तु सुपात्र नहीं मिल पाते, अतः बिना दान ही सुख अनुभव होता रहता है। दूसरे तो समाजों में मिलते ही है। उन अध्यापकों के बीच में चार वर्ष रहा परन्तु कभी किसी अध्यापक ने न तो आर्य समाज का नाम लिया और न स्वामी दयानन्द सरस्वती का। अक्सर सुबह प्रार्थना के बाद शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... अथवा कक्षा में विषय समाप्ति के बाद और बातों की चर्चा कभी न कभी हो जाती है। मेरा दुर्भाग्य, मैं भी आर्य समाजियों को हीन भावना से देखता था। हत्भाग्य हैं देवी-देवताओं, पितरों को नहीं मानते! मेरे कार्यालय में एक बाबू थे, पूरे कार्यालय में वे शायद अकेले आर्य समाजी थे। उनका आर्य समाजी होने का पता भी इसलिए लगा कि कुछ समय के लिए वे एक आर्य स्कूल के मंत्री बन गये थे। उन्होंने भी कभी आर्य समाज के विषय में कुछ नहीं कहा, यद्यपि मैं उनसे निकटता अनुभव करता था। उनके छः पुत्रियाँ थी और कुवांरी बहन, लडका कोई नहीं था। कुछ समय बाद हुआ भी परन्तु अकाल मृत्यु का ग्रास बन गया। पिता कुछ नहीं करते थें, छोटी सी नौकरी थी। बिना प्रेस, नील विहीन कमीज-पाजामा पहन कर कार्यालय आते। किराये का मकान था। दयनीय दशा थी जो ऐसी परिस्थिति में होनी ही थी। मैं सोचा करता था तथा घर पर भी पत्नि से कई बार कहा कि ऐसी स्थिति उसके आर्य समाजी होने के कारण हुई है। बदनसीब न देवी-देवताओं को मानता है और न पितरों को। भगवान को भी नहीं। हालांकि उन्होंने कभी कोई बात न मानने वाली नहीं कही थी क्यों कि कभी इस सम्बन्ध में बात ही नहीं हुई।

मेरे चाचा की दुकान आर्य समाज की दुकानों में से थी। दुकान पर बचपन से आना जाना होता रहता जैसा कि स्वभाविक है परन्तु कभी मैं लम्बे समय में भी आर्य समाज भवन के अन्दर दाखिल नहीं हुआ। कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। वहाँ कुछ हो तो जाना भी हो। सुबह हवन हो जाता था और उस समय घर से निकलने का समय नहीं होता था। हाँ पास में ही एक मंदिर है जहाँ हर समय ही रात्री 10 बजे तक लोगों का आना जाना रहता था, था क्या अब भी है, और स्वाभाविक रूप से मैं भी मंदिर चला जाता। अतः मंदिर के बारे में तो कुछ पता था परन्तु आर्य समाज से अनभिज्ञ ही रहा।

मैं 5वीं कक्षा विद्यार्थी था सरकारी स्कूल में। एक मुख्याध्यपक काशी से ट्रांसफर कर आये थे। सेवा निवृत्ति के पास की आयु, अलीगढ़ पाजामा, लम्बी शेरवानी और सिरपर टोपी के साथ छोटी सी दाढ़ी। उन्होने एक दिन भोजनावकाश के समय सब कलासों की सामूहिक मीटिंग ली और उसमें एक बादशाह का किस्सा सुनाया कि एक बादशाह अल्लाह को नहीं मानता था। अल्लाह ने एक दिन एक मच्छर उसके नाक में धुसा दिया जो मस्तिष्क में पहुँच गया। मस्तिष्क में जा कर जब भी मच्छर फड़फड़ाता तो बादशाह के सिर में भंयकर पीड़ा होती और बेचैनी से परेशान हो जाता। कई हकीमों को जांच के बाद भी कुछ समझ नहीं आया रोग का कारण। एक दिन एक हकीम आया और उसने इलाज की हामी भरी। हकीम ने कहा बादशाह सलामत जान बख्शी हो तो कुछ अर्ज करुँ। बादशाह की इजाजत के बाद हकीम ने फरमाया कि बादशाह सलामत मुझे इलाज के लिए आप के सिर पर जूते लगाने होंगे। बादशाह की तैरियाँ तो चढ़ी परन्तु वहां तो जान पर बनी हुई थी। साथ में खडे सरदार-मंत्री भी भौचक्के थे। बादशाह ने इलाज की इजाजत दे दी। अब जब भी हकीम बादशाह के सिर पर जूते का प्रयोग करता मच्छर बैठ जाता और उसका फड़फड़ाना बंद हो जाता। जूता-प्रहार बंद होते ही वह फिर फड़फड़ाना शुरु कर देता और बादशाह का सिर दर्द और बेचेनी शुरु हो जाती। लब्बो लुबाव कि अल्लाह को न मानने वाले का यही हाल होता है। उन्होंने काशी के विषय में एक प्रसिद्ध दोहा सुनाया- 'रांड, सांड, सीढ़ी, संन्यासी, इन से बचे तो सेवे काशीं।' इसकी व्याख्या भी की कि कैसे ये चारों- रांड, सांड, सीढ़ी और संन्यासी काशी के लिए मुसीबत बने हुए हैं। देखा फर्क। बात बात में मुख्याध्यपाक महोदय ने अपने धर्म का प्रचार और हिन्दू धर्म की कमी को बता दिया। अपना कर्त्तव्य निभा दिया और वें आर्य समाजी चूक गये।

शीर्षक है **'आर्य समाज का कार्य'** और अनुप्रश्न कि इसे कौन करेगा? आर्य समाजों की वस्तुस्थिति आप को बता दी।

मुसलमान कुरान को अल्लाह की पुस्तक कहते हैं और पूरी श्रद्धा रखते हैं। ईसाई बाइबिल को गॉड की पुस्तक कहते हैं और उसे सब से अधिक मान्यता देते हैं। मगर तथाकथित हिन्दुओं की कोई एक श्रद्धा पुस्तक नहीं है। कोई गीता पर श्रद्धा रखता है। कोई रामचरित्र मानस पर। कोई भगवत पुराण पर बहुतों की श्रद्धा बढ़ रही है और अब तो हर गुरु की अपनी पुस्तकें हैं। और उन के शिष्य केवल उन्हीं पर श्रद्धा रखते हैं। एक बार मुझे एक गुरुशिष्य अपने गुरु के कार्यक्रम में ले गया और वहाँ से दो पुस्तक पढ़ने के लिए मुझे दिलाई। मैंने उन्हें पढ़ा और देखा कि सिवाय गुरु की बढ़ाई के उन दोनों पुस्तकों में और कोई ज्ञान की बात नहीं थी। उनकी पुस्तकें लौटा कर मैंने उन्हें सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने के लिए दिया। चार-पांच दिन बाद में मेरे पास आये और सत्यार्थ प्रकार्श वापिस कर दिया। मैंने पूछा कैसी लगी पुस्तक तो उन्होंने धीमें स्वर में कहा 'हमें केवल गुरु की पुस्तकें ही पढ़ने को कहा जाता है। अन्य पुस्तकें नहीं। लगभग सभी सम्प्रदाय अन्य की पुस्तकें पढ़ने पर मनाही करते हैं केवल आर्य समाज ही ऐसा है जो सभी की पुस्तकें पढ़ने को कहता है जिससे हमें सत्य का अनुभव हो सके। कुछ समय पहले आर्य समाज के एक संस्थान ने कुरान को मूल रूप अरबी भाषा में पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था की थी।

हम तथाकथित हिन्दुओं की भी एक पुस्तक है जो ईश्वरीय ज्ञान से भरपूर केवल ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक है, वह है वेद। वेद ईश्वरीय पुस्तक क्यों है इसकी व्याख्या का स्थान नहीं, फिर आगे कभी इस पर विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा। विदेशी विद्वानों की एक बड़ी संस्था ने भी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान ठहराया है। इन्हीं वेदों की आज्ञा का पालन, निर्देशों का पालन ईश्वर की आज्ञा का पालन है। और इनका अनुपालन मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। और कर्त्तव्य पालन ही धर्म है। इन्हीं कर्त्तव्यों निर्देशों में वेद कहता है- हे मनुष्य तू ईश्वर की आज्ञा जो तुझे पता चली है वह अन्यों को बता, तो तू पुण्य का भागी होगा। यह तथ्य है कि जिस काम को करने से पुण्य मिलता है उसे न करने से पाप ही होगा। जैसे वेद में कहा गया है माता-पिता-गुरु की सेवा करो, इससे पुण्य की प्राप्ति होगी, तो न करने से पाप तो स्वाभाविक है। यदि मनुष्य वेद प्रचार करता है तो इससे ईश्वरीय आज्ञा का प्रचार होता है और पुण्य प्राप्ति होती है और न करने से पाप ही तो होगा।

इन्हीं वेदों के प्रचार के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज का गठन किया और केवल एक ही लक्ष्य मुख्य रखा वेद प्रचार। वेदों के प्रचार से समाज में धार्मिक भावनायें उत्पन होकर बुराइयाँ दूर होगी। सोचों यदि सारा समाज धर्म मार्ग अनुयायी बन जाये और इसकी बुराइयाँ जो स्वतः समाप्त हो जायेंगी, तो समाज में सुख ही सुख बरसेगा दुःख तो बुराइयों के साथ दूर हो जायेगा। तो समाजों का गठन हुआ था वेद प्रचार के लिए और हम लग गये दूसरे कामों में। इससे धन व शाक्ति का ह्रास होकर लक्ष्य दूर होता जा रहा है। समाजों का केवल और केवल एक ही लक्ष्य, अर्जुन के लक्ष्य भेद की तरह रहना चाहिये और वह है वेद प्रचार।

कुछ विद्वानों ने आर्य समाजों की दुर्दशा को देखते हुये वेद प्रचार का एक नया रास्ता खोजा। स्थान-स्थान पर दो-दो दिनों की पुरुषों और महिलओं की अलग-अलग निःशुल्क कक्षायें लगा कर वेद प्रचार का साधन बनाया जा रहा है। इन कक्षाओं में प्रश्नोत्तर के माध्यम से वेदों के विषय में सब कुछ बताया जाता है और उन्हें आर्य समाज के वैदिक सिद्धान्त समझाकर आर्यकरण का सफल प्रयास चल रहा है। इस प्रकार की कक्षायें उत्तर भारत के लगभग सभी प्रान्तों में लग चुकी है और चालू हैं। गुजरात, बंगाल, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ आदि में भी ऐसी कक्षाये लग चुकी हैं परन्तु आचार्यो के समयाभाव के कारण अभी विदेशों में यें कक्षायें प्रारम्भ नहीं हो पाई हैं।

आर्यों उठो और सब भेद भाव भूलकर वेद की आज्ञानुसार आर्य समाज के कार्य को बढ़ाने के लिए वेद शिक्षा के प्रसार-प्रचार हेतु इन कक्षाओं के लगवाने हेतु अपना पूरा प्रयास तन-मन-धन से करों। ईश्वर शुभ कर्म के लिए आप को सुख की प्राप्ति करायें। असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योर्तिगमय।

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-२८

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

ग्रामीण परिवेश में प्रसिद्ध आशीर्वाद है- **'दूधो नहाओ पूतो फलो।'** क्योंकि दूध हमारे समाज में मनुष्यो को पोषित करने का बहुत बड़ा, सहज और सर्वोत्तम साधन है। जहाँ ईसाई व मुस्लिम आदि मतों में व आधुनिक ऐलोपैथिक चिकित्सकों के द्वारा भी पशुओं के मांस व उससे मिलने वाले दूसरे प्रॉडक्ट (उत्पादों) को मनुष्यों के लिए पोषण का सरल सुलभ साधन मानते हैं वहीं आयुर्वेदाचार्य दूध व उससे प्राप्त होने वाले दूसरे उत्पादों व दाल आदि अन्न को मुख्य साधन मानते हैं। अन्न का प्रयोग तो सारे संसार में प्रचलित है अत: उस पर तो विवाद नहीं है विवाद मांस को लेकर ही मुख्य रूप से है। इस सम्बन्ध में कई लोग इस प्रकार से भ्रमित करते हैं कि दुग्ध भी मांसाहार ही है क्योकि चिकित्सक भी दूध को पशु वसा अर्थात् ऐनीमल फैट ही मानते हैं। किन्तु वे सब यह भूल जाते हैं कि किसी भी पशु से मांस स्वाभाविक रूप से बिना उसे मारे-काटे प्राप्त नहीं होता जबकि दूध पशुओं को बिना कष्ट दिये उनकी प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त किया जाता है। और पशुधन भी नष्ट नहीं होते। जिससे राष्ट्र की समृद्धि भी बढ़ती रहती है और गृहस्थ सुखी रहा करते हैं। पशुओं को मार कर खाने से दीर्घकाल में देश में पशु कम होने लगते हैं जिससे मांस भी मिलना कठिन होता जाता है और दूध भी नहीं मिलता। अत: सर्वोत्तम है दुग्ध। और हाँ इसे पशु वसा कहकर मांसाहार कहना उचित नहीं, हाँ यह शाकाहार भी नहीं है बल्कि इसे दुग्धाहार कहना ही उचित है। इसी कारण वेद भगवान का आदेश है कि गृहस्थों को वहीं रहना उचित है जहाँ गौ-भेड़, बकरी आदि दूध देने वाले पशु निकट उपलब्ध हों। अन्यथा हमें आधुनिक (शहरी) नगरीय सभ्यता में रहकर कैमिकल युक्त, नकली और अत्यन्त हानिकारक उत्पादों को दूध के नाम पर ग्रहण करना होता है। इस और इस जैसी और भी बहुत सी सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान का उपाय विद्वान उपदेशक और राज प्रबन्ध है। इसी से समाज निरुपद्रव रह पाता है। वर्तमान के धर्म निरपेक्ष राजप्रबन्ध से तो हम सब अधिक आशा नहीं रख सकते किन्तु विद्वान उपदेशकों को अवश्य ऋषियों के स्मृति उपदेशों को अपने समाज में ले जाना चाहिए जिससे समाज में अनेक विध उपकार होकर कल्याण प्रवृत हो सके। आगे ऋषियों द्वारा दिये गये कुछ वैसे ही उपदेश पर विचार करते हैं-

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुलेनित्यं कल्याणं तत्रवै ध्रुवम् ॥१॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रोमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥२॥
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥३॥

अर्थः- हे गृहस्थों! जिस कुल में भार्या से प्रसन्न पति और पति से भार्या सदा प्रसन्न रहती है, उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है और दोनों परस्पर अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य कलह वास करता है। यदि स्त्री पुरुष पर रूचि न रखे, वा पुरुष को प्रहर्षित न करे, तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में कामोत्पति कभी न होके सन्तान नहीं होते और यदि होते हैं तो दुष्ट होते हैं।

और जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता, तो उस स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुलभर अप्रसन्न (शोकातुर) रहता है। और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है, तब सब कुल आनन्द रूप दीखता है।

ऊपर उद्धरित किये गये श्लोक सनातन संस्कृति का एक ऐसा चित्र है जिसे विदेशी इतिहासकारों और कम्युनिष्टों व उनसे प्रभावित स्वदेशीय इतिहासकारों ने सदैव धूमिल करने का प्रयत्न किया है। वे सभी आर्ष संस्कृति को मुसलमान व ईसाई मतों से अधिक उच्च व अधुनिक दिखाने से बचते रहे हैं और उसे भी स्त्रीयों पर समान रूप से अत्याचार करने वाला सिद्ध करने का प्रयास करते रहे हैं। उन्हें इसका अवसर इसलिए मिल गया क्योंकि वे जिस समाज का विश्लेषण सनातन के नाम पर करने बैठे थे वह समाज सनातन संस्कृति से कोसों दूर प्राय: 1000 वर्ष वा उससे भी कहीं अधिक लम्बी देशी राजाओं व विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा उन पर लादे गये शासनादेशों व प्रतिबन्धों को अपनी परम्परा व संस्कृति समझने लगा था। साथ ही उनके पक्ष में तर्क भी गढने आरम्भ कर दिये थे।

हमारे ऋषि मुनियों ने सदैव विद्याविहीन को पशु कहा है और पशु को विद्या से युक्त करके पशुता से मुक्त कर मनुष्य बनाने का प्रयत्न किया है। उसके लिए सीधे व साहित्यिक ढंग से भी उपदेश किये हैं। यहाँ महर्षि मनु द्वारा कहे गये ये श्लोक हमें उत्तम मानवीय गुणों को धारण करने की प्रेरणा दे रहे हैं। हमारे देश में सनातन संस्कृति के कारण ही स्त्रियों को अपने राजा-पतियों के साथ राज सिंहासन पर बैठने का अधिकार रहा है। उन्हें सदैव ही साम्राज्ञी के रूप में देखा गया है। वे सजावट की वस्तु अथवा पुरुष की खेतियाँ कभी नहीं रही। मध्य काल में विदेशी प्रभाव ने ही हमारे यहाँ स्त्रियों की दशा खराब की थी। किन्तु अब जब ईसाई मत वाले देश जो कुछ काल पूर्व तक स्त्रियों में आत्मा भी नहीं मानते थे वे भी स्त्रियों को समान अधिकार देने की बात करने लगे हैं तब आर्यों व आर्य सन्तानों को कभी पीछे नहीं रहना चाहिए।

यदि गृह कलह से बचना चाहते हो तो अपने घर की स्त्रियों विशेषत: अपनी पत्नी को प्रयत्न पूर्वक प्रसन्न रखिये। यदि निकृष्ट, दुष्ट सन्तानों को अपने घर अपने वंश में नहीं चाहते हो तो अपनी पत्नी अपने घर की स्त्री को प्रसन्न रखिये। यदि घर के सभी लोगों को प्रसन्न रखने की इच्छा है तो अपने घर की स्त्रियों को प्रथम प्रसन्न रखना सीखिये। जीवन जीना भी एक कला है, एक चुनौति है, एक तप है, एक युद्ध है, इसे भार मान कर नहीं अपितु इसे पवित्र कर्तव्य मानकर निर्वहन कीजिए। यदि आप स्त्रियों को प्रसन्न रखोगे तो वे भी आपको सकुटुम्ब प्रसन्न रखेंगी। आपने यह तो याद रखा की कुटुम्ब को प्रसन्न रखना स्त्रियों का कर्तव्य है परन्तु यह भूल गये की स्त्रियों को प्रसन्न रखना आपका भी कर्तव्य है। ये प्रसन्न स्त्रियाँ आपको देवता बनाती हैं। लेकिन यह तभी सम्भव है। जब आप इन्हें देवी बनाओ। अन्यथा ये भी आपको नर्क का भागी बनाने में देर नहीं रखती हैं। अत: सुखी रहने व दु:ख से बचने के लिए स्त्रियों को सुखी रखना ही चाहिए।

क्रमश ....

सहज सरल सांख्य-१७

- आचार्य सतीश, दिल्ली

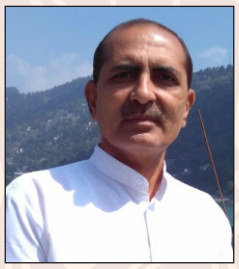

प्रतिपादित सांख्य सिद्धान्तों के प्रतिकल उद्भावित मत प्रस्तुत करने वाले वादियों की शंकाओं का समाधान इस अध्याय का मुख्य विषय है।

जब प्रकृति पुरुष के भेद का साक्षात्कार हो जाने से मोक्ष हो जाता है तो लौकिक शुभ कर्मों का आचारण करने की क्या आवश्यकता है?

मंगलाचरण अर्थात् शुभ कर्मों का आचरण किया जाना आवश्यक है क्योंकि-

1. शिष्ट पुरुषों आचार हमारे लिए आदर्श है जो उनके द्वारा किया जाता है।

2. शुभ कर्मों से शुभ फलों की प्राप्ति होगी ही चाहे फल की इच्छा रखें या न रखे।

3. वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा भी ऐसी ही है।

अत: वैदिक शुभ कर्मों का आचरण करना ही चाहिए।

फल ईश्वर देता है या कर्म से प्राप्त होता है?

ईश्वर जगत का अधिष्ठाता होने पर यह कहा जाता है कि कर्म फलों का देने वाला वही है, लेकिन कर्मों की उपेक्षा करके वह फल नहीं देता।

यदि ईश्वर अपने से सम्बन्ध रखने वाले जीवों के उपकार की स्वार्थ भावना से कर्मों का अधिष्ठाता है तो लोक की तरह यह स्थिति स्वार्थ मूलक होगी और रागद्वेष को उत्पन्न करेगी। जो कहो वह उपकार या परार्थ की भावना से अधिष्ठाता है तो चाहे कितना ही परार्थ से युक्त व्यक्ति हो, लोक में देखने में आता है कि उसमें में कुछ न कुछ अपने उपकार की भावना अर्न्तनिहित रहती है। फिर तो वह लौकिक अर्थात् एक शक्तिशाली राजा आदि की तरह हो जाएगा। उपरोक्त दोनों ही स्थितियों में वास्तविक ईश्वर की स्थिति सम्भव नहीं लगती और ऐसी स्थिति में वह एक कल्पना मात्र रह जाता है। जिसे केवल ईश्वर-वादियों ने अपने मनोविनोद अथवा अन्य भावनाओं की पूर्ति के लिए गद लिया है।

सूत्रकार का समाधान

प्रकृति को जगद्रुप में परिणत होने के लिए प्रेरणा देना ईश्वर का स्वभाव है क्योंकि प्रत्येक मूलल तत्व की नियतकारणता है अर्थात् उसका कार्य निश्चित है, निश्चित है, व्यवस्थित है। अत: ईश्वर के कार्यों में किसी प्रकार के राग का समावेश नहीं है। ईसी प्रकार आत्मा द्वारा प्रकृति के साथ मिलकर कर्मों का करना भी नियत है लेकिन अल्पज्ञ तथा अल्पशक्ति होने के कारण कर्मों का फलों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए इस अनन्त विस्तार से सम्पन्न संसार में समर्थ नहीं है और यह व्यवस्था ईश्वर के सामर्थ्य से ही हो पाती है अत: कर्मफल के अधिष्ठाता रुप में भी ईश्वर में राग का होना नहीं पाया जाता है।

यदि ईश्वर का प्रकृति के साथ संयोग हो तो वह नित्यमुक्त नहीं रहेगा जब्कि ऐसा नहीं है। प्रकृति के साथ ईश्वर का संयोग केवल नियन्त्रक और अधिष्ठाता के रूप में है।

प्रकृति के साथ ईश्वर का यदि योग मान लिया जाए तो संग दोष उत्पन्न होगा और वह भी परिणामी होगा लेकिन चेतन परिणामी हो नहीं सकता अत: प्रकृति ही जगत का उपादान कारण है जो परिणामी है अपने अचेतन स्वरूप के कारण।

यदि ऐसा कहो कि फिर ईश्वर अपनी सत्ता मात्र से जगत् की उत्पत्ति कर दे अलग से उपादान की क्या आवश्यकता है। तो जगत ईश्वर के समान गुणों वाला हो जाए जो कि देखने में नहीं आता। जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्ता, निर्विकार, अजर, अमर, आदि है जो दृश्यमान जगत् के ऊपर घटित नहीं होता। अत: ईश्वर किसी भी स्थिति में जगत् का उपादान नहीं हो सकता।

अत: कोई प्रमाण ऐसा नहीं है कि चेतन परिणामी होकर जगत् का उपादान हो। तब फिर ऐसा अनुमान करना भी व्यर्थ है और श्रुति में भी स्थान-स्थान पर प्रकृति को जगत् का उपादान कहा गया है।

ईश्वर नि:संग है, चेतन, ज्ञानस्वरूप, अपरिणामी है। अविद्या जड़, अज्ञानस्वरूप, परिवर्तन शील है दोनों का योग सम्भव नहीं है।

अविद्या विकार है, अर्थात् अन्य में अन्य की प्रतीति उसके संग से जगद्रचना मानने पर उसका अस्तित्व पहले मानना होगा। फिर उसके लिए भी अन्य कारण मानना होगा और इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष उत्पन्न होगा।

अविद्या और संसार का बीज और अंकुर की तरह सम्बन्ध नहीं है। वैसे भी संसार अनादि नहीं है ऐसा श्रुति का कथन है। संसार की उत्पत्ति हुई है और जिसकी उत्पत्ति होती है वह अनादि नहीं हो सकता। यदि अविद्या, विद्या से भिन्न है और अनादि तत्व है और ब्रह्म में जगत् का उपादान होने का उपपादन करता है तो फिर वही जगत् का उपादान हो ब्रह्म नहीं। और ऐसी स्थिति में ब्रह्म के उपादान होने में बाधा उत्पन्न होगी। अत: ब्रह्म जगत् का उपादान नहीं अपितु प्रकृति ही जगत् का उपादान है ऐसा निश्चित होता है।

अब प्रश्न उठता है कि यदि अविद्या का किसी से बाध नहीं हो सकता अर्थात् विद्या से भी नहीं तो मुक्ति आि के लिए विद्या प्राप्ति का उपाय करना निष्फल है।

यदि विद्या से अविद्या का बाध होता है और अविद्या ही जगत् का उपादान है तो विद्या से जगत् का भी बाध हो जाना चाहिए। लेकिन प्रत्यक्ष में तो देखा जाता है कि एक व्यक्ति को आत्मसाक्षात्कार होने पर अविद्या का नाश तो हो जाता है लेकिन जगत् की प्रतीति तो बनी रहती है अत: अविद्या जगत् का उपादान नहीं अपितु प्रकृति ही जगत् का उपादान है।

जगत् का रूप अविद्या मानने पर अविद्या को भी सादि मानना पड़ेगा। और जब अविद्या सादि अर्थात् अन्त होने वाला है अविद्या को अनादि, अखण्ड नहीं माना जा सकता। ऐसी स्थिति में यह सिद्ध नहीं होता कि ब्रह्म अविद्या के शाक्तियोग से प्रकृति को कार्यरूप में परिणत करता है अपितु ईश्वर जीवों के कर्मों को अपेक्षित करता हुआ ही प्रकृति को कार्यरूप में परिणत करता है।

क्रमश ....

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- **www.aryanirmatrisabha.com** पर उपलब्ध है। अत: आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अत: पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक- **www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका** पर जाएं।

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

व्याख्या-जिस से सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े, उसके करने को परोपकार कहता हूँ।

(सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

सब मनुष्यों के दुराचार को छुड़ाने और श्रेष्ठाचार को बढ़ाने के निमित्त मन, वाणी, शरीर तथा धन से प्रयत्न करने को परोपकार कहते हैं, क्योंकि दुराचार दुःख का और श्रेष्ठाचार सुख का कारण है।

५८. शिष्टाचार-जिसमें शुभगुणों का ग्रहण और अशुभ गुणों का त्याग किया जाता है, वह शिष्टाचार कहाता है।

व्याख्या-जो धर्माचरण पूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण कर, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग करना है; यही शिष्टाचार और जो इस को करता है वह शिष्ट कहाता है।

(सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

शुभगुण-सत्य आदि के ग्रहण और अवगुण-असत्य आदि के परित्याग के लिए सत्य एवम् असत्य का परिज्ञान आवश्यक है, इसके निर्णय के लिये ब्रह्मचर्य पूर्वक धर्म का आचरण अर्थात् छल, कपट, मद, मत्सर आदि से रहित होकर वेदविद्या का ग्रहण करके प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि प्रमाणों से विचार करना चाहिये, विचार करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देना चाहिये, यही **शिष्टाचार** अर्थात् शिष्ट लोगों का आचार है, जो ऐसा करते हैं, वे **शिष्ट** कहलाते हैं।

५९. सदाचार-जो सृष्टि से लेके आज पर्यन्त सत्पुरुषों का वेदोक्त आचार चला आया है कि जिसमें सत्य का ही आचरण और असत्य का परित्याग किया है, उस को **'सदाचार'** कहते हैं।।

व्याख्या-सत्पुरुषों का आचार-व्यवहार ही सदाचार कहलाता है परन्तु वह सत्पुरुषों का आचार वेदप्रतिपादित आचार ही होता है, जिसमें सत्य का आचरण और असत्य का परित्याग है। शिष्टाचार में हम अपनी विद्या से सत्य-असत्य का निर्णय कर ग्रहण वा परित्याग करते हैं, सदाचार में जो सत्पुरुष हैं उनके आचरण का अनुकरण करते हैं।।

६०. विद्यापुस्तक-जो ईश्वरोक्त, सनातन, सत्य-विद्यामय चार वेद हैं, उन को **'विद्यापुस्तक'** कहते हैं।

व्याख्या-ईश्वर के द्वारा प्रदत्त, हमेशा रहने वाले, सत्यविद्या के स्वरूप युक्त चार वेद हैं उनको विद्यापुस्तक (विद्या का ग्रन्थ) कहते हैं। वेद ही मुख्य रूप से विद्या है, इसकी सदृशता (वेदज्ञान के समाहितत्व से ही) के कारण अन्य (ज्ञान वा ग्रन्थ) को भी विद्या कहा जाता है।

६१. आचार्य-जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढ़ा देवे, उसको **'आचार्य'** कहते हैं।

व्याख्या-जो सांगोपांग वेद विद्याओं का अध्यापक, सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे, वह आचार्य कहाता है।
(सत्यार्थप्रकाश स्वम० प्रकाश)

जो अंग, उपांग सहित वेद विद्याओं को पढ़ा हो, स्वयं श्रेष्ठ आचार युक्त हो अर्थात् धार्मिक तथा शिष्ट हो, और इन सब वेद विद्याओं को पढ़ावे; सत्याचार को ग्रहण करावे, मिथ्याचार को छुड़वावे; उसे **आचार्य** कहते हैं।

६२. गुरु-जो वीर्यदान से लेके भोजनादि कराके पालन करता है, इस से पिता को 'गुरु' कहते हैं और जो अपने सत्योपदेश से हृदय के अज्ञान रूपी अन्धकार मिटा देवे, उसको भी **'गुरु'** अर्थात् आचार्य कहते हैं।।

व्याख्या-माता-पिता और जो सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे, वह भी गुरु कहाता है।

(सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

माता-पिता को गुरु कहते हैं क्योंकि सन्तान की उत्पत्ति (गर्भाधान, जातकर्म, निष्क्रमण आदि संस्कारों से) से लेकर भोजन, रक्षा, शिक्षा और व्यवहार आदि सिखलाते हैं। जो सत्योपदेश-वेद के उपदेश से अज्ञानता को दूर कर देता है, उसे भी **गुरु** कहते हैं।

६३. अतिथि-जिसकी आने जाने में कोई भी निश्चित तिथि न हो तथा जो विद्वान् होकर सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तरों के उपदेश से सब जीवों का उपकार करता है, उसको **'अतिथि'** कहते हैं।।

व्याख्या-जो विद्वान् हो, सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तरों के माध्यम से उपदेश करके अविद्या, अज्ञान, पाखण्डादि को दूर कर ज्ञान देकर बड़ा भारी उपकार करे और जिसका आना पूर्व से निश्चित न हो, जाना भी कार्य वा उद्देश्य की पूर्णता आदि पर निर्भर हो, सामान्यतः निश्चित न हो, **'अतिथि'** कहलाता है।।

६४. पञ्चायतन पूजा-जीते माता, पिता, आचार्य, अतिथि और परमेश्वर को जो यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है, उसको **'पञ्चायतन पूजा'** कहते हैं।।

व्याख्या-जीवित माता-पिता, आचार्य, अतिथि का यथायोग्य सत्कार-आज्ञापालन-सेवा-शुश्रूषा करनी उनकी पूजा है। परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करना अर्थात् वेदानुकूल चलना ही परमेश्वर की पूजा है।।

६५. पूजा-जो ज्ञानादि गुण वाले का यथायोग्य सत्कार करना है, उसको **'पूजा'** कहते हैं।।

व्याख्या-जो ज्ञान, प्रयत्न आदि गुण से युक्त है जैसे जीव और ईश्वर; पुनः जीव शरीर धारण करता है मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि के रूप में, इसमें मनुष्य (पश्वादि में) ही ज्ञान की अभिव्यक्ति, धारण और विचार करने में समर्थ है; अतः मनुष्य का सत्कार, सेवा, सम्मान और उचित उपयोग लेना पूजा है। परमेश्वर के प्रति कृतज्ञता श्रद्धा, आज्ञापालन और उपासना करनी पूजा है।

क्रमश ....

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	04 दिसम्बर	दिन-शनिवार	मास-मार्गशीर्ष	ऋतु-हेमन्त	नक्षत्र-अनुराधा
पूर्णिमा	19 दिसम्बर	दिन-रविवार	मास-मार्गशीर्ष	ऋतु-हेमन्त	नक्षत्र-मृगशिरा
अमावस्या	02 जनवरी	दिन-रविवार	मास-पौष	ऋतु-शिशिर	नक्षत्र-मूल
पूर्णिमा	17 जनवरी	दिन-सोमवार	मास-पौष	ऋतु-शिशिर	नक्षत्र-पुनर्वसु

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

अपने गौरवशाली देश और पूर्वजों का इतिहास जानने का अनुभव अद्वितीय था, विवेकपूर्ण विषयों को समझने की प्रेरणा गजब थी।

स्वाध्याय उपरान्त आर्य बनना (विवेक पूर्ण), अन्यों को आर्य बनाना।

नाम : योगेश स्वामी, आयु : ४२ वर्ष, योग्यता : स्नातकोत्तर, कार्य : आई.टी. नौकरी, पता : माजरा डबास, नई दिल्ली-८१

आर्य पाखण्डवाद का कड़ा विरोध करता है एवं किसी भी तथ्य को तर्क की कसौटी पर जांचता है। यही आर्य समाज की खूबसूरती जिसने मुझे इस सत्र को करने की प्रेरणा दी। यही बात मैंने सत्र में सीखी जो अनमोल है।

तन, मन, धन से आर्यों की संख्या वृद्धि हेतु सहयोग रहेगा।

नाम : रविन्द्र, आयु : ३७ वर्ष, योग्यता : स्नातक, कार्य : अध्यापक, पता : मजलिस पार्क, दिल्ली।

प्रेमवत व्यवहार रहा, वैदिक संस्कार, हवन, प्रातः जागरण बहुत ही सुखद अनुभूति दिया। आचार्यों का प्रतिबोधन बहुत ही उच्च कोटी का था। भोजन शयन आदि की व्यवस्था भी बहुत अच्छी रही। अपने आज तक के जीवन में इससे पहले इतने अच्छे संस्कार के साथ जीने की अन्तर्मन में इच्छा तो थी परन्तु प्लेटफार्म नहीं मिला था जो अब मिला। सादर धन्यवाद कुछ प्रश्न रह गए हैं मन में जिनका समाधान शायद 'सत्यार्थ प्रकाश' से अवश्य हो जाएगा।

नाम : काजल सोनी, आयु : ३५ वर्ष, योग्यता : एम.ए, बी.एड., कार्य : अध्यापिका, पता : रातू, रॉची।

यह सत्र दिनांक 27 नवम्बर 2021 से 28 नवम्बर 2021 तक (दो दिनों) चला पहला तो यहां की विधि व्यवस्था सुसज्जित अनुशासन के अधीन है दूसरा यहाँ पर विधि व्यवस्था को सम्भाल रहे आर्यों (व्यक्तियों) का विचार एवं व्यवहार बहुत ही अच्छा एवं अनुकरण करने योग्य है। आर्य समाज से पूर्व से जुड़े व्यक्तियों की राष्ट्रीय भावना सराहनीय एवं अनुकरणीय है। और तीसरा मेरे भीतर भ्रान्तियाँ थी की आर्य समाज भी अन्य बाबाओं (सत्संग गिरोहो) की तरह अपनी दुकान चला रहा है यह भ्रांति बिल्कुल दूर हुई। मैंने पाया आर्य समाज के द्वारा प्रचारित प्रसारित किया जाने वाला विचार राष्ट्रीय भावना (राष्ट्र प्रेम) से ओत-प्रोत है

मैं आर्य निर्मात्री सभा के इस महान कार्य का प्रचार-प्रसार करुँगा। और राष्ट्र निर्माण, में अपना योगदान दूँगा।

नाम : वासुदेव रविदास, आयु : ४४ वर्ष, योग्यता : स्नातकोत्तर, कार्य : अध्यापन, पता : भुर कुण्ड़ा, रामगढ़, झारखण्ड़।

बहुत ही प्रेरणादायक। हमारे मन में कई तरह के भ्रम, अंधविश्वास व रुढ़िवादिता जो थे वह अब दूर हूए। हमने स्वयं एवं राष्ट्र को बेहतर तरीके से समझा। जीवन जीने के लक्ष्य को समझा। हमारे आर्यावर्त्त के लोग क्यों श्रेष्ठ, इस तथ्य को समझा। वेद, ईश्वर, आत्मा, धर्म एवं ईश्वर उपासना विधि को समझा। इस दो दिवसीय शिविर में खान-पान (भोजन) की जानकरी भी मिली। हमें ईश्वर अर्थात् वेदों के सिद्धान्त पर चलने की प्रेरणा मिली, ताकि हम वर्षो की गुलामी को हटाकर पुनः आर्यावर्त्त की स्थापना कर सकें।

नाम : विरेन्द्र कुमार, आयु : ३९ वर्ष, योग्यता : एम.ए, बी.एड., कार्य : अध्यापन, पता : बेलगड़ा, सिमरिया, हजारीबाग

संध्या काल

मार्गशीष-मास, हेमन्त-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(20 नवम्बर 2021 से 19 दिसम्बर 2021)
प्रातः कालः 6 बजकर 30 मिनट से (6.30 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00P.M.)

पौष-मास, शिशिर-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(20 दिसम्बर 2021 से 17 जनवरी 2021)
प्रातः कालः 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 P.M.)

मार्गशीर्ष

20 नवम्बर-19 दिसम्बर 2021 — ऋतु- हेमन्त

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
रामप्रसाद बिस्मिल बलिदान दिवस 19 दिसम्बर					रोहिणी कृष्ण प्रतिपदा 20 नवम्बर	रोहिणी कृष्ण द्वितीया 21 नवम्बर
मृगशिरा कृष्ण तृतीया 22 नवम्बर	आर्द्रा कृष्ण चतुर्थी 23 नवम्बर	पुनर्वसु कृष्ण पंचमी 24 नवम्बर	पुष्य कृष्ण षष्ठी 25 नवम्बर	आश्लेषा कृष्ण सप्तमी 26 नवम्बर	मघा कृष्ण अष्टमी 27 नवम्बर	पू० फाल्गुनी कृष्ण नवमी 28 नवम्बर
उ० फाल्गुनी कृष्ण दशमी 29 नवम्बर	हस्त कृष्ण एकादशी 30 नवम्बर	चित्रा कृष्ण द्वादशी 1 दिसम्बर	स्वाती कृष्ण त्रयोदशी 2 दिसम्बर	विशाखा कृष्ण चतुर्दशी 3 दिसम्बर	अनुराधा कृष्ण अमावस्या 4 दिसम्बर	ज्येष्ठा/मूल शुक्ल प्रतिपदा/द्वितीया 5 दिसम्बर
पूर्वाषाढ़ा शुक्ल तृतीया 6 दिसम्बर	उत्तराषाढ़ा शुक्ल चतुर्थी 7 दिसम्बर	श्रवण शुक्ल पंचमी 8 दिसम्बर	धनिष्ठा शुक्ल षष्ठी 9 दिसम्बर	शतभिषा शुक्ल सप्तमी 10 दिसम्बर	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल अष्टमी 11 दिसम्बर	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल नवमी 12 दिसम्बर
रेवती शुक्ल दशमी 13 दिसम्बर	अश्विनी शुक्ल एकादशी 14 दिसम्बर	भरणी शुक्ल द्वादशी 15 दिसम्बर	भरणी शुक्ल त्रयोदशी 16 दिसम्बर	कृतिका शुक्ल चतुर्दशी 17 दिसम्बर	रोहिणी शुक्ल चतुर्दशी 18 दिसम्बर	मृगशिरा शुक्ल पूर्णिमा 19 दिसम्बर

पौष

20 दिसम्बर 2021-17 जनवरी-2022 — ऋतु- शिशिर

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
आर्द्रा कृष्ण प्रतिपदा 20 दिसम्बर	पुनर्वसु कृष्ण द्वितीया 21 दिसम्बर	पुष्य कृष्ण तृतीया 22 दिसम्बर	आश्लेषा कृष्ण चतुर्थी 23 दिसम्बर	मघा कृष्ण पंचमी 24 दिसम्बर	पू० फाल्गुनी कृष्ण षष्ठी 25 दिसम्बर	उ० फाल्गुनी कृष्ण सप्तमी 26 दिसम्बर
हस्त कृष्ण अष्टमी 27 दिसम्बर	चित्रा कृष्ण नवमी 28 दिसम्बर	स्वाती कृष्ण दशमी 29 दिसम्बर	विशाखा कृष्ण एकादशी 30 दिसम्बर	अनुराधा कृष्ण द्वादशी 31 दिसम्बर	ज्येष्ठा कृष्ण चतुर्दशी 1 जनवरी	मूल कृष्ण अमावस्या 2 जनवरी
पूर्वाषाढ़ा शुक्ल प्रतिपदा 3 जनवरी	उत्तराषाढ़ा शुक्ल द्वितीया 4 जनवरी	श्रवण/धनिष्ठा शुक्ल तृतीया 5 जनवरी	शतभिषा शुक्ल चतुर्थी 6 जनवरी	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल पंचमी 7 जनवरी	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल षष्ठी 8 जनवरी	रेवती शुक्ल सप्तमी 9 जनवरी
रेवती शुक्ल अष्टमी 10 जनवरी	अश्विनी शुक्ल नवमी 11 जनवरी	भरणी शुक्ल दशमी 12 जनवरी	कृतिका शुक्ल एकादशी 13 जनवरी	रोहिणी शुक्ल द्वादशी 14 जनवरी	मृगशिरा शुक्ल त्रयोदशी 15 जनवरी	आर्द्रा शुक्ल चतुर्दशी 16 जनवरी
पुनर्वसु शुक्ल पूर्णिमा 17 जनवरी					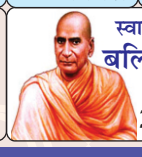 स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस 23 दिसम्बर	

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।